बांधव-गौरव-ग्रन्थ-माला की अन्य पुस्तकें

बांधवेश वीर वेङ्कटरमणसिंह

लेखक—बाबू भानुसिंह बाघेल

मूल्य ।=)

दिव्य ज्योति

लेखक—सरदार सूर्यबली सिंह परिहार,

एम० ए०, 'साहित्य-रत्न'

मूल्य 1)

कवि स्वयं राज्य के साहित्यक क्षेत्र में लब्ध प्रविष्ट हैं।

माला के प्रथम, द्वितीय पुष्प 'बांधवेश वीर वेङ्कटरमणसिंह जी देव' की जीवनी तथा 'जीवन-ज्योति' के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। उक्त दोनों पुस्तकें गवेषणा एवं गम्भीरता से परिपूर्ण हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त दोनों मननशील पुस्तकों के पठनान्तर पाठक मानसिक थकावट का अनुभव कर रहे होंगे, एतदर्थ, 'परिषद्' ने 'मधु-श्री' ऐसी भावपूर्ण, मनोरम एवं रसीली कविताओं का संग्रह प्रस्तुत करना उचित समझा।

हमें विश्वास है कि—साहित्यानुरागी सज्जन गण 'मधु-श्री' का रस पान कर एक नवीन स्फूर्ति का अनुभव करते हुये हमें चतुर्थ पुष्प प्रकाश में लाने का सुअवसर प्रदान करेंगे और इस प्रकार 'परिषद्' रीवा राज्य के सम्पूर्ण कवि एवं लेखकों की कृतियों को साहित्य-संसार के सामने उपस्थित कर अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ हो सकेगी।

विजयदशमी
सं० १९९८ वि० प्रकाशक

परन्तु कोई भी मनुष्य किसी दशा में जीवन के कठोर सत्यों का अनुभव किये बिना नहीं रह सकता। सौन्दर्य-प्रेमी कवि होते हुए भी, शर्मा जी काव्य के सत्य और शिव अङ्गों की उपेक्षा नहीं कर सके। मनुष्य-जीवन के सम्बन्ध में इन्होंने कई कवितायें लिखी हैं जो 'मधु-श्री' में संग्रहीत हैं।

सुख और दुःख के विषय में कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ मर्मस्पर्शिनी हैं :—

छोटे-से जीवन में आते,
आँखों में कितने सुख-सपने ?
जो सन्ध्या के अरुण घनों-से,
मन में चित्र बनाते अपने।
सहसा दुख की घटा उमड़ती,
आँखों में आता है सावन।
आह-रुदन-उच्छ्वासों मे,
कहता है करुण कहानी जीवन।

संग्रह में कवि की अनेक उक्तियाँ हृदयग्राहिणी हैं। उनमें से एक और सुन लीजिए:—

नीर से अभिसार करता,

स्वप्न-सा सुकुमार बन कर।

वेदना का भार ढोता,

प्रेम का उपहार कह कर।

शर्मा जी कवि-सम्मेलन के कवि नहीं हैं। इस लिए इनकी रचनाओं में कौतूहलजनक वैचित्र्य के अपेक्षा भाव-गाम्भीर्य अधिक है। इनका झुकाव साम यिकता की दिशा में न होकर स्थायित्व की दिशा में है। शब्दों के माया-जाल में फँस कर भावों का बलि दान करना इन्हें पसन्द नहीं है।

शर्मा जी से मेरा घनिष्ट सम्बन्ध है। इनकी रचनाओं को मैं स्नेहमयी दृष्टि से देखता हूँ। ईश्वर करे, इनकी प्रतिभा का उत्तरोत्तर विकास हो।

नईगढ़ी-निकेतन,
प्रयाग
२०-९-४१

गोपाल शरण सिंह
सभापति
श्री रघुराज-साहित्य-परिषद्
रीवाँ

पं० हरशरण शर्मा, 'शिव', 'साहित्य-रत्न'

निवेदन

मेरी रचनाओं का एक संग्रह 'सुषमा' के नाम से भोंसा बन्धु-आश्रम, प्रयाग से सन् ३४ में निकला था। पत्र-पत्रिकाओं में उसकी चर्चा भी हो चुकी है। यह दूसरा संग्रह 'मधु-श्री' साहित्यिकों को भेंट कर रहा हूँ।

मैं जिस वातावरण में रहकर साहित्य-सेवा कर रहा हूँ, उसका अनुभव करने पर प्रत्येक पाठक को मेरे प्रति हार्दिक सहानुभूति हुए बिना न रहेगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

'सुषमा' उस समय की रचना है, जिस समय काव्य में मैं कल्पना को विशेष महत्व देता था; किन्तु साहित्यिक प्रगति के साथ ही मेरी रुचि में भी परिवर्तन हुआ और मैंने उस दिशा की ओर चलने का प्रयास किया जहाँ अनुभूतियाँ कल्पनाओं के अन्तराल को स्पर्श करती हैं। अस्तु, इस संग्रह में प्रायः उन्हीं रचनाओं को स्थान दिया

गया है जिनका सम्बन्ध हृदय की मार्मिक-अनुभूतियों से है। इन रचनाओं में मैंने जीवन में होने वाली आशा-आकांक्षा, सुख-दुख जीवन-प्रवाह का अपनी शक्ति के अनुकूल चित्रण किया है।

कुछ रचनायें मेरी उन भावनाओं का चित्रण है जिन्हें मैंने उस अज्ञात शक्ति के अनुराग में लिखी है जिसकी खोज में निखिल-विश्व प्रयत्नशील है फिर भी किसी कृति की पूर्णता का बोध आज तक इस संसार में किसी को नहीं हो सका, इस दृष्टि से मेरी ये रचनायें भी प्रायः अपूर्ण ही कही जायँगी।

मैंने जो कुछ लिखा है वह जीवन-संघर्ष से उत्पन्न हुई अनुभूतियों के आधार पर है। हाँ, मेरे पास ऐसी मधुमय शब्दावली नहीं जिसके बल पर मैं सुधी-जनों का मनोरंजन कर सकूँ परन्तु वाणी के मंदिर में पूजा करने का अधिकार प्रत्येक मानव को प्राप्त है।

इसलिये मैंने भी अपने भाव-प्रसून वाणी को अर्पित करने का साहस किया है। न तो मैं कवि हूँ और न कलाकार। संसार की आँखों से ओझल में साहित्य साधना में

तन्मय हूँ, इसी में मुझे कुछ मानसिक शान्ति प्राप्ति होती है। यदि इन रचनाओं से सहृदय जनों का कुछ भी मनोरंजन हो सका तो मैं अपनी साधना को सफल समझूँगा।

कला-मंदिर	विनीत
माधवगढ़ (रीवा)	
श्रावण-शुक्ल सप्तमी	हरशरण शर्मा 'शिव'
सम्वत् १९९८ वि०	

विषय-सूची

भारति जय भारति जय !

•••

सरसिज के शत-दल पर,
शोभित कर-वीणा लिये,
कनक-किरण स्निग्ध-ज्योति,
राजित सित अंचल पर,
तारक के दीप जले,
पुष्पों के हृदय खिले,
मधुर-हास भास्वर है,
मधु-श्री सा गगन-तले।
पुलक उठी धरा अमल
दूर हुआ संसृति भय,

भारति जय भारति जय॥

मुखरित पग नूपुर से
उतरो जग उपवन में,
गूँज उठें निखिल-लोक
गतियों के मृदु-स्वर से,

सुषमा की छाया में,
बरसे रस कण-कण में
पावन हों धरा-धाम,
जो विलीन माया में।
मोह-नींद त्याग विश्व
होवे नव जागृतिमय।

भारति जय भारति जय ॥

हृदय सिक्त करो मृदुल
चरण-सुधा सींच-सींच
उगे प्रेम-बीज हरित,
डोले मृदु मलयानिल,
परिमल पाटम्बर का,
फैले जग जीवन में,
होवे, स्मिति लाली से,
रंजित उर अम्बर का,
ज्ञान-ज्योति धवल-नील
होवे संस्कृति में लय।

भारति जय भारति जय ॥

मधु-श्री

◆◆◆

एक लहर मधु-श्री की आई,
सरस हुआ प्राची का आँगन।
उर की मुकुलित-कलियों में हैं,
झल मल झल मल होते रस-कण॥

गूँज उठा प्राणों के स्वर से,
जग की अभिलाषा का मधुवन।
क्यों आज अचानक पुलकित है,
मानव का आकुल अस्थिर-मन॥

नैराश्य-तिमिर की छाया में,
अनुरंजित आशा की लाली।
पशुता के दग्ध-मरुस्थल में,
छलकी मानवता की प्याली॥

भावों का ज्वार उमड़ आया,
हो गये शिथिल भव-भय-बन्धन।
क्यों आज अचानक पुलकित है,
मानव का आकुल अस्थिर-मन॥

उल्लास वदन पर खेल रहा,
अनुराग दृगों में सस्मित है।
जड़ता अधरों पर उँगली रख,
क्यों आज न जाने विस्मित है॥

जाग्रत-मानव उस ओर बढ़ा,
हो रहा जहाँ सकरुण-क्रन्दन।
क्यों आज अचानक पुलकित है,
मानव का आकुल अस्थिर-मन॥

उच्छ्वास-रुदन, अभिशाप जहाँ,
वरदान वहीं हँसने आया।
भ्रम-पूर्ण विश्व के जीवन में,
विश्वास अरुण बसने आया॥

समता का हुआ विकास रुचिर,
हो रहा हृदय में परिवर्तन।
क्यों आज अचानक पुलकित है,
मानव का आकुल अस्थिर-मन॥

भावों का ज्वार उमड़ आया,
हो गये शिथिल भव-भय-बन्धन।
क्यों आज अचानक पुलकित है,
मानव का आकुल अस्थिर-मन॥

उल्लास वदन पर खेल रहा,
अनुराग दृगों में सस्मित है।
जड़ता अधरों पर उँगली रख,
क्यों आज न जाने विस्मित है॥

जाग्रत-मानव उस ओर बढ़ा,
हो रहा जहाँ सकरुण-क्रन्दन।
क्यों आज अचानक पुलकित है,
मानव का आकुल अस्थिर-मन॥

उच्छ्वास-रुदन, अभिशाप जहाँ,
वरदान वहीं हँसने आया।
भ्रम-पूर्ण विश्व के जीवन में,
विश्वास अरुण बसने आया॥

मधु-श्री

समता का हुआ विव
हो रहा हृदय में
क्यों आज अचानक पु
मानव का आकुल श्री

1.

साजे हैं तार नये जीवन की वीणा में

गुंजित हैं गीत नवल,
सस्मित है हृदय-कमल,
पुलकित हैं प्राण-विकल,
शुष्क-भाव बने तरल,

युगल-नयन छलक रहे संसृति की करुणा में।
साजे हैं तार नये जीवन की वीणा में॥

कूज रहे भाव-विहग,
थिरक रहे सहज-सुभग
झूम उठा भावुक-जग
ध्वनित हुये जल-थल-नभ,

मधुमय रस बरस पड़ा कवियों की रचना में।
साजे हैं तार नये जीवन की वीणा में॥

कला से

•••

सखि, सुन्दरता के वाहन पर,
दिशि-दिशि में भर मधु-गुंजन।
आओ सत्यलोक की अप्सरि,
करता है जग अभिनन्दन॥

अरुणाचल-छाया से कर दो,
अनुरंजित उर के कण-कण।
कर दो अमर-प्रेम की मदिरा
से मुकुलित जग के लोचन॥

अहो! सजनि मुस्कान-किरण से,
करो कल्पना-लोक सृजन।
जीवन के तममय मंदिर में,
जगमग कर दो कलित-किरण॥

गीतों की सुकुमार मूर्च्छना,
में भर दो निज स्वर कम्पन।
चित्रों की शुचि भाव-व्यंजना
में ज्योतित कर दो चितवन॥

हृदय-कंज की किंजल्कों पर,
सखि, बिखेर दो रस के कण।
निखिल-विश्व के दग्ध-प्राण में,
बरसो बन सावन के घन॥

सत्य, शिव, सुन्दरम तुम्हें है,
अर्पित कलाकार-जीवन।
चिर-सुन्दर की करो प्रतिष्ठा,
उसके प्राणों में क्षण-क्षण॥

अनुरंजन

•••

फूँको मोहन मधुर-मधुर,
गूँजे वंशी का पिक स्वर।

भरे एक अनुभूति हृदय में।
गूँजे मृदु-संगीत पवन में,
यमुना के कल-कल प्रवाह सी,
उमड़े रस-धारा जीवन में।

सरस बने मधुपों का गुंजन,
सस्मित हो जगती का मधुवन।
प्रेम ज्योति की कलित-किरण से,
इन्द्र-धनुष का हो अनुरंजन।

फूँको मोहन मधुर-मधुर,
गूँजे वंशी का पिक-स्वर ॥

कोमल-किसलय से सज जाये,
कुंज-कुंज का पुलकित मृदु तन।
लोल लताओं के अंचल में,
खग सा कूजे मानव का मन।

झूम उठे जग बन मतवाला।
पीकर मदिर प्रेम का प्याला॥
जग-जग के प्यासे प्राणों में,
भर दो एक लगन की हाला।

फूँको मोहन मधुर-मधुर।
गूँजे बंशी का पिक-स्वर॥

पीड़ा से

•••

करो नहीं चीत्कार हृदय में,
संतापित प्राणों की पीड़ा।
तुम धीरे से रहो सिसकती,
कर के अश्रु-कणों से क्रीड़ा॥

यहाँ कौन सुनता है बोलो,
उर की सकरुण आह सजनि।
पीड़ा से ही जहाँ मिली है,
वरदानों की राह सजनि॥

एक कली सी कसको उर में,
सन्तापित प्राणों की रानी।
कनक-किरण सी हँसो हृदय में,
अयि करुणा की कोमल वाणी।

यह जग तो सुन्दर मेला है,
कर लो अपना मोल सजनि।
इसमें जितने दीवाने हों,
लो उनसे हँस बोल सजनि॥

प्राणों की सिहरन में मेरे भर दो
अपने तन का कम्पन।
उर की कोमल बलि-वेदी पर
रहो दहकती चिनगारी बन॥

गूँजो उर के कमल-कोष में,
तुम भ्रमरी-सी बोल सजनि।
पी जीवन का मधुर-मधुर रस,
लो निज आँखें खोल सजनि॥

एक उदासी लिये विश्व में
रही सदा बनकर एकाकिनि।
अन्तर के सूने प्रदेश में
कलरव करती मृदु संलापिनि॥

सुख-दुख की लघु धूप छाँह में,
करो प्राण से खेल सजनि।
मृदुल-हृदय के तार-तार से,
कर लो अपना मेल सजनि॥

संसृति-सुख के लघु-सपने में
कर लो निखिल विश्व आराधन
मन में चिर-विरक्ति सी आकर
कर लो एक मौन साधन॥

मंथर-गति से उर-उपवन में
चुन लो सुख के फूल प्रिये!
जीवन की सूखी डाली में
शेष रहें दुख-शूल प्रिये॥

नंदन

•••

जगमग कर दे निखिल-विश्व को
अमर काव्य की अरुण-किरण।
तरल-तूलिका से अभिव्यंजित
करे कल्पना के लोचन॥

छाया-चित्र हृदय का ले कर,
करे प्रेम का लोक सृजन।
अचल समाधि लगाकर जिसमें,
लुटा रहा है जग जीवन॥

तृण-तृण की मंजुल-हरीतिमा,
ओस-कणों का हार पहन।
करे मंत्र-अभिषेक हृदय का,
बहे सुधा-धारा-पावन॥

रस विभोर होकर जग-जीवन,
अरुण-कंज सा खिले नवल ।
दिशि-दिशि को सौरभ से भर दे,
जग के निःश्वासों का परिमल ॥

मरम बने शत-शत पुलकों में,
कवि के प्राणों का गुंजन ।
छन्द-छन्द में अमर काव्य के
गीतों का हो अभिनंदन ॥

क्या नहीं पहुँच सकता ?

◆◆◆

नहीं पहुँच सकता क्या बोलो
भाव-कुसुम का लेकर भार।
प्रेम-रंग से रँगकर जग को,
नहीं पहुँच सकता उस पार ॥

भव-सागर की तरल-तरंगों
से कम्पित जाती किस ओर ?
जर्जर जीवन-तरी हाय ! यह
पाती नहीं कहीं भी छोर ॥

मार्ग अगम है मैं दुर्बल हूँ,
उठते रहते झंझावात।
उनसे ऊँची लहरें उठतीं,
आँखों में आती बर्सात् ॥

झूला झूल रहा सपनों का,
रचकर एक मृदुल-हिंदोल ।
आशा की मरकत प्याली में,
देती है जीवन-रस घोल ॥

आह ! उनींदी पलकों में,
छिपकर सोता चंचल-उल्लास ।
व्यथित-विकल करुणा का प्रतिपल,
रचा हुआ अन्तर में रास ॥

एक करुण-स्वर का होता है,
अन्तर में चिर अनहद नाद ।
सिहर-सिहर उठते प्राणों में,
जीवन के भैरव-अवसाद ॥

मर्म-कथा के गीत विहंगम
उड़े चले जाते किस ओर ?
नभ-गंगा में डूब-डूब कर
बने हुये वे प्रेम-विभोर ।

जीवन

•••

जीवन है यह संगीत सखे,
जिसकी मन-मोहक तान सुनें।
अपनी सांसों का सूत्र खींच,
काया का सुन्दर जाल बुनें॥

क्यों कहते इसे असार सखे,
प्रतिक्षण उपहार नये मिलते।
जो बिछुड़े हुये दिनों के हैं,
उनके सुकुमार हृदय खिलते॥

क्यों होते रहते खिन्न सखे,
कह कर यह जीवन सपना है।
क्या मर मिटने के बाद कभी,
इस जगती में फिर तपना है॥

क्या है जीवन के पार सखे,
जो ऊब-ऊब यों जाते हो।
उसके प्रवाह में तैर-तैर,
क्यों आकुल होकर गाते हो॥

कहते हैं सुन्दर-स्वर्ग जिसे,
वह भी तो इसमें बसा हुआ।
कहते हैं बन्धन-मुक्त जिसे,
वह भी तो इसमें फँसा हुआ॥

यह जीवन ही तो कहा गया,
इस जगती में शृंगार सदा।
इसके तपने ही में सुख है,
इसमें जगती का भार लदा॥

आँख मींच कर देखें हम,
तो समझ नहीं सकते उलझन।
यह विभूति का सुन्दर-घर है,
घिरा हुआ है इसमें बन्धन॥

—:o:—

कल्पना

•••

उर के भाव-हंस पर उड़ कर,
कवि की रुचिर-कल्पना जाती।
प्रेम-ज्योति से ज्योतित पथ पर,
अपने कोमल-गीत सुनाती॥

कर-वीणा के तारों को,
जीवन के स्वर में आज मिलाये।
नीले-नभ के छवि-दुकूल में,
ज्योत्स्ना सा गात्र छिपाये॥

पवन-पंथ करता प्रशस्त,
वारिद-बूँदों से सींच रहे हैं।
किरण-कौमुदी के तारों से,
रवि-शशि उसको खींच रहे हैं॥

चिर-सुन्दर को खोज रही है,
गायन-रोदन-उच्छ्वासों में।
पारिजात-पुष्पों का परिमल,
वासित करती निश्वासों में॥

प्रेम जब सुकुमार आया !

•••

उच्छ्वसित-आकुल-लहर में,
करुण-रस का ज्वार आया।
मोतियों से पात्र भरने
को दृगों में प्यार आया॥

कला-मंदिर में उसी की ज्योति का अभिसार छाया।
हृदय-सागर पार करने प्रेम जब सुकुमार आया॥

हो गये वे तरल-शीतल,
जल रहे थे जो विलोचन।
कर रहे अब वे युगों की,
कामना का ताप मोचन॥

निखिल-संसृति ने उन्हीं में दया का अवतार पाया।
हृदय-सागर पार करने प्रेम जब सुकुमार आया॥

तृपित था जो मनोमरुथर,
अब वही रस-प्लुत बना है।
छिपा था जो मोह-घन में,
वह किरण संयुत बना है॥

' थी दुख-दाह छाई मेघ ने मल्लार गाया।
'-सागर पार करने प्रेम जब सुकुमार आया॥

भावना की तरी लेकर,
पार होना चाहता है।
वेदना की रज्जु से वह,
थाह लेना जानता है॥

है किनारे पर लगाने मुक्ति की पतवार लाया।
हृदय-सागर पार करने प्रेम जब सुकुमार आया॥

पूर्ण-पुरुष

•••

मेरे प्राणों का मधु-गुंजन,
है बना गगन में नाद ओ३म्।
मेरे उर के आलोक-पुंज,
से निर्मित रवि-नक्षत्र-सोम॥

है बना पूर्व में अरुणोदय,
मेरे मन का अनुराग नवल।
मेरे यौवन का मधुर-प्रणय,
बन गया चाँदनी शरद-धवल॥

मेरे सुरभित उच्छ्वासों से,
बह चला विश्व में मलय-पवन।
मेरे पुलकित उल्लासों से,
पल्लवित हुआ जग का मधुवन॥

मेरी मंजुल-मुस्कानों की,
छाया है घन पर इन्द्र-धनुष।
कहता है सब जग जिसे प्रकृति,
यह माया है मैं पूर्ण-पुरुष॥

मेरे मन की कल्पना नई,
करती अग-जग की सृष्टि-प्रलय।
मैं ही तो सत्य चिरन्तन हूँ,
है मुझ में ही सब जग का लय॥

हास है मधुमास मेरा

•••

कंज से फूटी अरुणिमा,
रँग गया संसार उसमें।
मैं मधुप सा कर उठा,
कोमल-करुण गुंजार उसमें॥

भर गया संगीत जग में,
एक मधुमय तान बन कर।
है उसी में गा उठा कवि,
सहज-पुलकित प्राण बन कर॥

सीखने मुझसे लगे खग-वृन्द,
आ कर गान मेरा।
बोलने उनमें लगा यह,
मधुर कोमल प्राण मेरा॥

◆◆◆

प्रेम का मधुवन लगा था,
सींचते थे किरण-माली।
हेम-घट से ढालते थे,
भर उषा की स्नेह-लाली॥

कवि-कुसुम कितने खिले थे,
मिल चुके हैं जो सुरभि में।
ले रहे जो साँस मधुमय,
पैठ मलयज के हृदय में॥

आदि-कवि की लेखनी से,
स्रोत फूटा काव्य-मधु का।
निविड़तम में जो हृदय के,
बन गया अवतार विधु का॥

चरित विकसा चाँदनी सा,
थे खिले आशा कुमुद-दल।
पी रहे थे जो तृषित से,
सुधा के मधु-बिन्दु शीतल॥

ज्ञान-वापी में भरा था,
व्यास ने जीवन सुधा-रस।
है जिसे पीने चला यह,
विश्व आकुल प्यास के वश॥

कल्पना की बेलियों पर,
थे प्रलय के पुष्प चुनते।
कालिदास महान कवि के,
प्राण थे मधु गीत सुनते॥

मधुर द्राक्षा-रस पिलाकर,
भावना को तरुण कर के।
कर दिया चिर-स्निग्ध चितवन,
अधर को कुछ अरुण करके॥

अभिज्ञान शाकुन्तल रचा,
क्या प्रीति की गंगा बहाई।
अमर कृति की पंक्तियों में,
कीर्ति की मुस्कान छाई॥

सूखी नसों में रक्त का,
संचार करने के लिए।
हिन्दुत्व में अमरत्व का,
शृंगार करने के लिये॥

तुलसी कला की तूलिका से,
कर गया संसार चित्रित।
हो उठे विश्वास लय से,
भक्ति-वीणा तार मुखरित॥

कला का मधुमास छाया,
कूकते कवि-प्राण कोकिल।
विश्व कवि ने भर दिया है,
गीत में स्वर ताल कोमल॥

सरस कविता की लहर में,
प्राण बुद-बुद से मिले हैं।
अरुण-आभा ले हृदय की,
भाव-सरसिज से खिले हैं॥

इतिहास मेरा

•••

कठिन कर से लिख दिया,
किसने करुण इतिहास मेरा।

प्रेम का वरदान पाकर,
मैं चला पथ में अकेला।
विश्व ने पागल पुकारा,
मृत्यु से नित खेल-खेला॥

कब किसी की वेदना को,
सुन सका संसार निर्मम।

हाथ जो ऊपर बढ़ाये,
स्वार्थ ने नीचे ढकेला।
गिर पड़ा दुख-गर्त में मैं,
हो चला उपहास मेरा॥

कठिन कर से लिख दिया,
किसने करुण इतिहास मेरा॥

रज-कणों से स्नेह करता,
जीर्ण-पट से ढाँक कर तन,
मैं पड़ा रहता निशा भर,
शशि-करों से बाँध कर मन।

कौन पूछे पीर मेरी,
विश्व कारागार है जब।

मैं सुधा को दान देता,
खींच कर उच्छ्वास का धन।
सब मुझे गृहहीन कहते,
विश्व है आवास मेरा॥

कठिन कर से लिख दिया,
किसने करुण इतिहास मेरा॥

भूमि की शैय्या बना कर,
गगन का पट नील ताने,
पवन से निज मर्म कह कर,
मैं चला जब मुक्ति पाने।

उमड़ कर करुणा किसी की,
स्नेह का मधुपर्क ले कर,

आ गयी मुझको उठा कर,
भाव गंगा में बहाने।
मै उसी में तर गया,
तब गा उठा उल्लास मेरा।

कठिन कर से लिख दिया,
किसने करुण इतिहास मेरा॥

नींद से अभिसार करता,
स्वप्न सा सुकुमार बन कर।
वेदना का भार ढोता,
प्रेम का उपहार कह कर,

मै मरुस्थल में उगाने,
लो चला अंगूर रसमय।

अश्रु-कण से सींचता हूँ,
हृदय के उद्गार भर कर।
जग मुझे अज्ञान कहता,
यही चरम विकास मेरा।

कठिन कर से लिख दिया,
किसने करुण इतिहास मेरा॥

गीत

•••

मृदुल-चंचल मेघ-मन में,
वेदना-विद्युत चमकती।
घोर गर्जन भर हृदय में,
है मुझे भयभीत करती॥

ध्वनित है संताप गह्वर,
प्राण-बन्दी कीर मेरा।
चेतना खोकर प्रवाहित,
हो रहा दृग-नीर मेरा॥

प्रबल-आँधी में बदल कर,
उग्र है निःश्वास मेरा।
बढ़ रहा है दग्ध-जीवन,
में अमर-विश्वास मेरा॥

कल्पना के हरित दल पर,
स्नेह की नीहारिका है।
देखती सौंदर्य उसका,
भावना अभिसारिका है॥

छाँह में विश्वास वट के,
प्रेम-सरिता के पुलिन हैं।
मैं उन्हीं में मौन फिरता,
मुकुल मेरे दृग-नलिन हैं॥

मुग्ध-मधुकर सी उन्हीं में,
झूलती है विश्व की छवि।
किरण-रंजित चित्र उसके,
खींचता है ध्यान में कवि॥

सुख-दुख

•••

छोटे से जीवन में आते,
आशों में कितने सुख-सपने।
जो सन्ध्या के अरुण-घनों से,
मन में चित्र बनाते अपने॥

हृदय-भुवन को ये करते हैं,
अपनी कनक-किरण से रंजित।
ताल-ताल पर उर कम्पन के,
होते उनके नूपुर शिंजित॥

शीतल-सुरभित निःश्वासों से,
लहराता उनका छवि अंचल।
मधुर-प्रेम के रंग-मंच पर,
खेल-खेलते हैं ये प्रतिपल॥

मनोभाव की रजत रेणु पर,
बहती उनकी छबि-रस धारा।
जो अन्तर के अन्तरित्त में,
छूती प्राणों का ध्रुव तारा॥

सहसा दुख की घटा उमड़ती,
आता है आँखों में सावन।
आह-रुदन-उच्छ्वासों से,
कहता है करुण कहानी जीवन॥

विविध रंग के वे सुख-सपने,
अन्तर के तम में मिल जाते।
जो ज्योतित रहते थे रवि से,
आहों के घन में छिप जाते॥

जगमग थीं जो आशा-किरणें,
तिरोधान होती हैं क्षण में।
हँसता जो सौंदर्य्य अधर पर,
वह छिप जाता हृदय-सुमन में॥

जहाँ पुलकती अरुण-प्रभा थी,
वहीं निराशा रजनी आती।
सुख-दुख दोनों अजर-अमर हैं,
मानव के श्रुति में कह जाती॥

आशा

***

जीवन में आशा प्रतिपल है।

उसकी रश्मि-राजि से संतत,
मानव का उर है आलोकित।
अखिल-विश्व के प्राणों में है,
आशा का कोमल स्वर मुखरित॥

जर्जर है वसुधा की तरणी,
इस पर हैं असंख्य जग-प्राणी॥
पार हो रहे दुःख सागर से,
कह कर अपनी करुण-कहानी॥

आँसू की सरसी में उनके हँसता आशा अरुण-कमल है।
जीवन में आशा प्रतिपल है॥

मधु-श्री

' ·पुलकती अरुण-प्रभा थी,
निराशा रजनी आती।
दुख दोनों अजर-अमर हैं,
। के श्रुति में कह जाती॥

आशा

***

जीवन में आशा प्रतिपल है।

उसकी रश्मि-राजि से संतत,
मानव का उर है आलोकित।
अखिल-विश्व के प्राणों में है,
आशा का कोमल स्वर मुखरित॥

जर्जर है वसुधा की तरणी,
इस पर हैं असंख्य जग-प्राणी॥
पार हो रहे दुःख सागर से,
कह कर अपनी करुण-कहानी॥

आँसू की सरसी में उनके हँसता आशा अरुण-कमल है।
जीवन में आशा प्रतिपल है॥

मधु-श्री

भू पर स्वर्ग रचा करती है,
शिल्पी-सी मानव की आशा।
कठिन-शोक संतप्त हृदय पर,
लिखती जीवन की परिभाषा॥

क्षण में मन को पुष्पित करती,
भर देती साँसों में परिमल।
दुर्गम भय-प्रद जीवन पथ में,
साहस का देती है संबल॥

उसकी मंजुल-अरुण-किरण में,
रंगती कला धवल अंचल है।
जीवन में आशा प्रतिपल है॥

•••

मैं अनुराग लिये बैठा हूँ,
तेरे छबिमय जग-आँगन में।
देख रहा हूँ अपलक-दृग से,
तेरी छबि अणु-अणु कण-कण में॥

दी उडेल तू ने वसुधा प
चारु-चाँदनी शशि प्याली से
हैं दृग स्नात उसी में आकुल,
थे जो तपे किरणमाली से॥

उलझ-उलझ मेरी चितवन से,
बिखरा तेरा हार गगन में।
नक्षत्रों का वैभव पाकर,
नभ मुस्काता भुवन-भुवन में॥

ऊषा के झीने अंचल से,
झलकी तेरी कला मनोहर।
खिले सौरभित कुसुम विपिन में,
सरसिज से सज गये सरोवर॥

अट्टहास कर उठा विश्व यह,
ध्वनित हुये जल-थल अंबर हैं।
मैंने भी हँसना चाहा पर,
खुले न मेरे बन्द अधर हैं॥

मैं एकाकी सोच रहा कुछ,
उड़तीं अलकें मलयानिल में।
मैं सुनता तेरे गीतों के,
स्वर को सरिता के कल-कल में॥

मेरे उच्छ्वासों से तेरे,
उत्तरीय के छोर फहरते।
ताल-द्रुमों के पत्र सिहरते,
उनसे हैं जल-विन्दु छहरते॥

कर अभिसिक्त नयन निज उनत,
तेरे पद-रज कण धोता हूँ।
चिर संचित दृग के जल-मुक्ता,
पलकों से पथ में बोता हूँ॥

जहाँ कभी हिम-कण बरसे थे,
वहीं आज ज्वाला जलती है।
जहाँ पवन की मंथर गति थी,
वहीं आज आँधी चलती है॥

दुख-सुख दोनों निशा-दिवा से,
आते हैं उर के अम्बर में।
जो मानव के स्वप्न चित्र से,
अंकित हैं अन्तर-अन्तर में॥

खिले सुमन का क्या भविष्य है ?
जन्म रज-कणों में लेना।
एक शलभ का चिर विकास है,
जल-जल प्राणों को देना॥

कलियों का उज्वल विकास है,
हृदय-खोल कर खिल जाना।
मानवता का यह भविष्य है,
चिर अतृप्ति में मिल जाना॥

ऊप
झल
खिल
सर्

अट्टहास कर उठा
ध्वनित हुये जल-थर
मैंने भी हँसना
खुले न मेरे बन्द ..

मैं एव
उड़तीं
मैं सुन
स्वर को

मेरे उच्छ्‌वासों से
उत्तरीय के छोर
ताल-द्रुमों के .

रुचिर-कल्पना-वल्लरियों के,
छवि-तोरण हैं दृग-द्वारों पर।
कूक-कूक पिक पुलकित होते,
भाव कुसुम के उपहारों पर॥

शैशव की ऊषा में आतीं,
नव उमंग की किरणें रक्तिम।
श्रमित जरा-संध्या भर जाती,
अपनी आशा-आभा अंतिम॥

मृदुल-पुष्प सा कठिन कुलिश सा,
पर है उसमें समता कितनी?
छोटा सा मिट्टी का घर है,
उस पर मन की ममता कितनी?

ममता

•••

छोटा सा मिट्टी का घर है,
उस पर मन की ममता कितनी ?

सुख का अरुण प्रकाश उसी में,
दुख का गहन तिमिर है छाया।
प्राण-पिकों का एक मुंड,
उसमें सुख से बसने को आया ॥

करुणा के घन शीतल करते,
स्नेह-चाँदनी धवल बनाती।
यौवन का बसन्त अँगड़ाता,
अनिल-सुरभि आँगन में लाती ॥

पीड़ाओं की आँधी चलती,
सहने की है क्षमता कितनी।
छोटा सा मिट्टी का घर है,
उस पर मन की ममता कितनी ?

रुचिर-कल्पना-वल्लरियों के,
छवि-तोरण हैं दृग-द्वारों पर।
कूक-कूक पिक पुलकित होते,
भाव कुसुम के उपहारों पर॥

शैशव की ऊषा में आती,
नव उमंग की किरणें रक्तिभ।
श्रमित जरा-संध्या भर जाती,
अपनी आशा-आभा अंतिम॥

मृदुल-पुष्प सा कठिन कुलिश सा,
पर है उसमें समता कितनी?
छोटा सा मिट्टी का घर है,
उस पर मन की ममता कितनी?

भविष्य

•••

अखिल-विश्व के रंग-मंच पर,
होते रहते पट-परिवर्तन।
प्रतिक्षण क्रान्ति दिखाई देती,
जैसे घन पर विद्युत-नर्तन॥

समय-यवनिका के अन्तर में,
छिपे हुये अज्ञात रहस्य।
जो प्रतिबिम्बित होते मिटते,
कहता है जग उन्हें भविष्य॥

है भविष्य आशा से रंजित,
मानव उस पर आँख लगाये।
देख रहा है कब से उर में,
कल्पित-सुख के चित्र बनाये॥

जहाँ कभी हिम-कण बरसे थे,
वहीं आज ज्वाला जलती है।
जहाँ पवन की मंथर गति थी,
वहीं आज आँधी चलती है॥

दुख-सुख दोनों निशा-दिवा से,
आते हैं उर के अम्बर में।
जो मानव के स्वप्न चित्र से,
अंकित हैं अन्तर-अन्तर में॥

खिले सुमन का क्या भविष्य है?
जन्म रज-कणों में लेना।
एक शलभ का चिर विक्रम है,
जल-जल प्राणों को देना॥

कलियों का उज्वल विकास है,
हृदय-खोल कर खिल जाना।
मानवता का यह भविष्य है,
चिर अवनि में मिल जाना॥

निखिल-सृष्टि के आदि-अन्त में,
है भविष्य की प्रतिमा अंकित।
युग-प्रवाह में वारि-वीचि से,
हैं भविष्य के प्राण तरंगित॥

युग-प्रभात

•••

मानवता का है युग-प्रभात, किरणें समता की रहीं फूट,
वे जीवन-पथ के तिमिर-पुंज पर ज्योति-विशिख सी रहीं छूट।

हँस उठे विश्व के प्राण-विकल,
रस-प्लावित होकर अरुण हुए,
दिशि-दिशि में आभा झलक उठी
वे आशा-रस से तरुण हुए।
मधु-कोष खुला उर-कलियों का,
करुणा के लोचन करुण हुए।
वे विषम-विषमता ज्वाला निर्मित
मन-मंदिर में वरुण हुए।
भावों के पुष्पित-पादप हैं,
वे स्नेह-सुरभि से मसृण हुए।
जो सूखे उर के प्रान्तर थे,
वे रस पी-पीकर सतृण हुए॥

धूमिल अस्फुट-छाया-पथ में उन किरणों की है मची लूट,
मानवता का है युग-प्रभात किरणें समता की रहीं फूट।

टूटी है युग-कारा जग की,
जयमाल लिए आया जीवन,
अमृत का घूँट पिलाने को
कर में प्याला ले आया मन,
सूखे-अधरों में सींच रहा,
रस के कन-कन मधुमय पावन।
थी जहाँ दाह-ज्वाला जलती।
है आज वहीं छाया सावन।
अवरुद्ध प्रेम के द्वार खुले,
हो गये शिथिल जड़ दृढ़-बंधन,
थी जहाँ खून की गंध उड़ी
अब वहीं सौरभित है चंदन,

जड़ता के गिरि पर अरे, अचानक गिरा ज्ञान का वज्र टूट,
मानवता का है युग-प्रभात किरणें समता की रहीं फूट॥

निरुपाय

•••

हाय, कैसे गीत गाऊँ ?

दीनता पथ में खड़ी है,
जीविका का पाश लेकर,
मुक्त-मन को बाँध लेना
चाहती है त्रास देकर,

दूर जाना चाहता हूँ पर कहाँ मैं राह पाऊँ ?
हाय, कैसे गीत गाऊँ ?

धैर्य्य को संगी बनाकर,
मैं चला उसको मिटाने,
कर्म्म की करवाल ले भय
मृत्यु का उसको दिखाने,

वह बढ़ी विकराल होकर प्राण मैं कैसे बचाऊँ ?
हाय, कैसे गीत गाऊँ ?

है लपट से तन झुलसता,
दृग-घटों का नीर सूखा।
तरल करता जो हृदय वह,
कल्पना का चीर सूखा॥

दग्ध है कवि-कंठ-कोमल, तृषा मैं कैसे बुझाऊँ !
हाय कैसे गीत गाऊँ !

देखता जलता मुझे जग,
आँख में उसके न पानी,
गीत सुनता जानता
सुनता नहीं दुख की कहानी;

जल रहा चिन्ता-चिता में वेदना किस को सुनाऊँ !
हाय, कैसे गीत गाऊँ !

कैसा गान

•••

अरे कैसा गान गाया ?

अवनि, अम्बर और रस की,
जग उठी है सुप्त काया।
विश्व हाहाकार ने है
नवल-मृदु-स्वर ताल पाया।

नृत्य करती रागिनी में,
सुधा के पग नूपुरों में,
फहर कर अञ्चल उसी का,
चेतना भरता स्वरों में
चिर-युगों की याचना ने
यह नया वरदान पाया।

अरे कैसा गान गाया ॥

तारकों में आँख-मूँदी
सुन हृदय का गान तेरा,
इन्दु-करों में चाँदनी भर,
सींचता शशि-प्राण तेरा।
बाँसुरी में बन्द करने,
को विरह विशीर्ण आया।

अरे कैसा गान गाया॥

स्वर मिलाने को विकल है,
सरस उर के तार कोमल,
तरल करता कंठ को निज,
पवन पीकर पुष्प परिमल,
श्रमित-शिशु-मन को सुलाकर
प्रेम का परिधान छाया।

अरे कैसा गान गाया॥

हास मृदु आया उषा में
अरुण-विमल विकास बनकर,
मिल रहा सन्ध्या सजनि से,
एक प्रेमोच्छ्‌वास बनकर,
समय के संगीत में मिल,
विश्व के उर में समाया।

अरे कैसा गान गाया ?

पीड़ा के घन

◆◆◆

बरस रहे आँखों से मेरे पीड़ा के मतवाले घन।
सिहर-सिहर उठते प्राणों के उनको छू कर कोमल-कण॥
धुली प्रेम की सिता बँधी जो जीवन के छोरों में थी।
घुली प्यार की लाली जो इन आँखों के कोरों में थी।
छाई काली घटा अरे इन अरमानों के तारों में
आह ! जलन आई कितनी इन आहों के मनुहारों में।
योंहीं मौन पड़ा रहने दो पीड़ा की इस तड़पन में
अन्तर का संगीत सुनूँ मैं उनकी नीरव धड़कन में।
उथल-पुथल मच जाने दो सखि हिय की निर्दय हूकों में।
उच्छ्वासें ये मिल जाने दो स्मृति की पगली कूकों में॥

मेघ मालायें

***

पहिन कर जल-मुक्ता के हार,
घनावलियाँ लहरों सी लोल।
पवन से परिरंभित हो समुद,
गगन में करती हैं कल्लोल।

प्रणय की रस-धारा में लीन,
खोजते जग के आकुल प्राण।
लता-द्रुम किसलय दर्पण में,
उन्हीं की मृदु-मंजुल मुस्कान।

करों में ले सुर-चाप विशाल
बाँध कर कुंचित काले केश।
चढ़ी गिरि शिखरों पर सोल्लास,
खेलती मृगया धर यह वेश॥

बूँद-बाणों से देती बेध,
विरह के प्राण मृदुल सुकुमार।
वेदना का वह चलता स्रोत,
उमड़ते दृग के पारावार।

भानु से आँख मिचौनी खेल,
छिपा लेती उसका आनन।
पुलककर सस्मित होते हैं,
धरा पर तृण-तरु-गिरि-कानन।

तरल कर ज्योत्स्ना से हृदय,
निशा में नभ पर रचतीं रास।
छबीले अधरों पर प्रतिपल,
चपल-विद्युत का खिलता हास॥

तिमिर की काली अलकों में,
गूँथती नक्षत्रों के हार।
लुटा देती फुहियों में घोल,
हृदय का उज्ज्वल पावन प्यार॥

बनों में मुखरित हो जाती
मधुर केकी की करुण-पुकार।
गूँजती जल-थल अम्बर में,
सरस झिल्ली की मृदु झनकार॥

देख कर घन-परियों का लास,
भूलती पिकी बसन्त वियोग।
सघन-आमों के बन में विकल,
खोजती प्रियतम का संयोग॥

गरजकर भरती स्वर लहरी।
विश्व-उर-वीणा में कोमल,
छोड़तीं उछ्वासें शीतल,
पुष्प-प्राणो में भर परिमल॥

एकाकी-जीवन

◆◆◆

मौन जाय किसका मैं करता,
एकाकी-जीवन में प्रतिपल।
तृण-तृण तरु-तरु लता-पुष्प में,
किस की छवि ज्योतित है अविकल॥

जब सन्ध्या के हेम-हास से
अनुरंजित होता है अम्बर
जब नलिनी के अरुणाँचल में
छिप जाता है शिशु सा मधुकर।

तब विभोर होकर मैं गाता,
होती निखिल दिशायें मुखरित,
कला-तूलिका लेकर अपनी
करती चिर-सुन्दर को अङ्कित।

हैं जिसकी सौंदर्य्य-सुधा से,
जीवन-मुक्त विश्व के लोचन।
एक पुलक से प्लावित होते,
सुन्दर उर के कोमल कण-कण ॥

नक्षत्रों की किरण-ज्योति में,
मूर्तिमान जिसका प्रकाश है।
नभ की नीली व्यापकता में,
जिसकी छाया का विकास है।

उस चिर-सुन्दर से हिल-मिल कर,
रंग-मंच कविता का रचता,
दग्ध-हृदय को सिक्त बनाकर,
मन के अवसादों से बचता ॥

कब बजेगी बाँसुरी ?

◆◆◆

प्रेम-सरिता के पुलिन पर,
कब कला का रास होगा।
पाप-पतझड़ में सुनहला,
पुण्य कब मधुमास होगा॥

सुप्त-सरसिज से हृदय में,
कब अनन्त विकास होगा।
दुखित मानव के अधर पर,
कब अरुण-मृदु हास होगा॥

दूर होगी कब धरा से,
सभ्यता चिर-आसुरी।
कब बजेगी बाँसुरी॥

कब प्रणय की चाँदनी से,
धवल होगा हृदय-धूमिल।
कब रसों से तरल बन,
हो जायगा भव-सिन्धु-उर्मिल॥

स्नात हो उसमें धुलेंगे,
कब मनुज के भाव पंकिल।
साधना को कब सुवासित,
कर सकेगा पुलक-परिमल॥

दृगों में बस जायगी कब
विश्व की छवि-माधुरी।
कब बजेगी बाँसुरी॥

परिचय

क्यों पूछ रहे मेरा परिचय ?

मैं मानवता के अन्तर में,
हँसता रहता निर्बन्ध सरल।
पुलकों के परिमल से करता,
निःश्वासों को सुरभित-शीतल॥

भावों से खेला करता हूँ
सौंदर्य्य हृदय का बन अविकल
वसुधा को सरस किया करता
संगीत-सुधा से मैं अविरल।
रहता न कभी मुझ में संशय,
क्यों पूछ रहे मेरा परिचय !

उर में बाड़व की दीप-शिखा,
जलते जिसमें अनुताप विकल।
आहें बन धूम्र-पुंज निकलीं,
जो नभ में हैं घन सी संकुल॥

बरसे जिनसे जग में मधुकण,
आशा-कलिका हो गयी मुकुल।
जीवन-सरिता की लहरों से,
अभिषिक्त हुआ उसका अंचल॥
करता रस-बिन्दु हृदय संचय,
क्यों पूछ रहे मेरा परिचय?

ज्योतित करता प्रेम-ज्योति से,
प्रिय की स्मृति के मंजुल-क्षण-क्षण।
संसृति में चिर-सौंदर्य बिखर
जाता होते रंजित रज-कण॥

उत्सर्ग किया करता जिन पर,
मानव अपना अस्थिर-यौवन।
सुख-सुषमा से रस-सिक्त
हुआ करता मानव का आकुल-मन॥
प्राणों की निधि मुझ में अक्षय।
क्यों पूछ रहे मेरा परिचय?

मैं राग-द्वेष से मुक्त न कोई,
बाँध सका मुझ को बंधन।
हुंकार भरी स्वर में भैरव,
करुणा से सजल बने लोचन॥

मुझ में ताँडव का गीत मुखर,
करते हैं रोम-रोम निस्वन।
वैभव का ओज भरा मुझ में,
हो सका न जिसका कभी निधन॥
जल-जल कर भी रहता रसमय।
क्यों पूछ रहे मेरा परिचय?

किसकी

•••

नील-धवल-कोमल द्युति किसकी ?
नभ ने भर ली उर में अपने।
तारक-दृग से लगा देखने,
वसुधा पर रजनी के सपने॥

कितनी बार सिन्धु की लहरें,
उठीं किसे प्रतिपल छूने को।
उर में हा-हाकार छिपाकर,
वसुधा चली किसे मिलने को॥

पुलकित-पवन मृदुल-पल्लव के,
मर्मर में किसके गुण गाता।
पावक की लपटों पर किसकी,
छबि का सित-अंचल फहराता॥

दीप जला प्राणों का उर में,
करता किसकी मनुज-साधना।
युग-युग से उसमें जीवित है,
किस असीम की प्रेम कल्पना॥

मुकुल-दृगों से किसे देखकर,
हँसती उषा अरुण-मृदु-वसना।
खग-कुल किसके मृदु-स्वर-मधु में,
डुबो रहे हैं कोमल रसना॥

मधु-श्री की छाया में किसको,
आकुल-पिक मधु-गीत सुनाता।
किसकी छवि का रस भर सरसिज,
मधुकर को मकरन्द पिलाता॥

किसकी आभा देख घनों में,
रचते रास मोर मतवाले।
किसकी चरण-सुधा को भर-भर,
छलकाते गिरि अपने प्याले॥

चिन्तन

•••

दूरागत सागर की लहरें,
चूम रहीं वसुधा के रज-कण।
मंद-पवन मृदु-सरस स्पर्श से,
बरसा जाता मरु में रस-कण॥

गगन गरजकर भर जाता है,
श्रुतियों में कोमल स्वर कम्पन।
पावक आलोकित कर जाता,
तिमिर-गुहा में विद्युत के कण॥

धरा-सिन्धु के आकर्षण से,
जल में ज्वार उमड़ आता है।
शीत-ताप के परिरंभन से,
नभ में मेघ घुमड़ जाता है॥

जिस जगती में प्रेम-प्रभा,
हँसती अधरों पर अरुणोदय के।
शशि-पट छलक-छलक पड़ता है,
सित अंचल पर चंद्रोदय के॥

विरह गीत के कोमल-स्वर में,
जहाँ पिकी का उर है मुखरित।
पावस का प्रथम-प्रभात जहाँ,
चातक के स्वर से है गुंजित॥

जिसमें रुचिर-कला के चरणों
का होता है नूपुर शिंजन।
छोड़ उसे प्राणों के पंछी,
किस अदृश्य का करते चिन्तन॥

अमर-विश्वास

◆◆◆

किसी की सुस्मृति की किरणें,
किये रहती हैं मन में प्रात।
अरुण-आभा से उनकी पुलक,
प्रफुल्लित रहता उर जल-जात॥

अमर-भावों का मृदु-गुंजन,
सुनाता जग-जग को संगीत।
कल्पना की तितली का नृत्य,
विश्व-छवि को लेता है जीत॥

बाँटने को सौरभ जग में,
निकलती है अन्तर से स्वास।
विकल प्राणों में आया प्रेम,
प्रेम में एक अमर-विश्वास॥

प्राण मेरे

•••

मौन होकर रह न सकते, हैं विकल ये प्राण मेरे।

रुदन का संदेश लेकर,
अश्रु-दूत प्रयाण करते;
भरि उन्हीं की छवि-सुधा को,
रुचिर-दृग-सर हैं छलकते।

सिक्त हो जाते निकल कर, चिर विकम्पित गान मेरे,
मौन होकर रह न सकते, हैं विकल ये प्राण मेरे॥

माधवी की मृदुल-शय्या
पर सरल शिशु खेलते हैं,
या कि सरसिज पर मधुप,
मृदु-मंद-स्वर में गूँजते हैं।

भ्रान्ति यह होती मुझे, हैं वे सहज अरमान मेरे;
मौन होकर रह न सकते, हैं विकल ये प्राण मेरे॥

—

भावना की विकच-कलियों,
में भरा सौरभ विनय का;
छा रहा आलोक उर में,
प्रेम-रवि के नव-उदय का।

कल्पना की बेलियों पर, हैं खिले आह्वान मेरे;
मौन होकर रह न सकते, हैं विकल ये प्राण मेरे॥

साधना के अगम-पथ पर,
बढ़ रहे ले अमर ज्वाला;
झुलसती उसकी लपट से,
अनय की अभिशाप माला।

निखिल-जग के हृदय-दीपित, कर रहे बलिदान मेरे;
मौन होकर रह न सकते, हैं विकल ये प्राण मेरे॥

सुख की छाया में पुलकित हो,
उल्लास चपल उत्साह प्रबल।
दुख की छाया को सींच-सींच कर,
बहे अश्रु-गंगा अविरल॥

दोनों के छाया-चित्रों से,
अनुभूति हृदय में भर जावे।
मानव-खेकर तरणी उसमें,
सुख-दुख के पार उतर जावे॥

आकांक्षा

***

मानवता का हो चिर-विकास,
मन में फैले प्रत्यय-परिमल।
वसुधा पर स्वर्ग उतर आवे,
खेले उसमें मानव प्रतिपल ॥

प्राणों के गुंजन से मिलकर,
आशा का कूक उठे कोयल।
छा जावे अन्तर में प्रति-ध्वनि,
आहों में गरज उठें बादल ॥

प्रेम-सुधा से प्लावित होकर,
धवल बनें उर के कोमल-कण।
जिनमें सुख-दुख की छाया का,
नृत्य देख पावें जग लोचन ॥

सुख की छाया में पुलकित हो,
उल्लास चपल उत्साह प्रबल।
दुख की छाया को सींच-सींच कर,
बहे अश्रु-गंगा अविरल॥

दोनों के छाया-चित्रों से,
अनुभूति हृदय में भर जावे।
मानव-खेकर तरणी उसमें,
सुख-दुख के पार उतर जावे॥

आकांक्षा

•••

मानवता का हो चिर-विकास,
मन में फैले प्रत्यय-परिमल।
वसुधा पर स्वर्ग उतर आवे,
खेले उसमें मानव प्रतिपल॥

प्राणों के गुंजन से मिलकर,
आशा का कूक उठे कोयल।
छा जावे अन्तर में प्रति-ध्वनि,
आहों में गरज उठें बादल॥

प्रेम-सुधा से प्लावित होकर,
धवल बनें उर के कोमल-कण।
जिनमें सुख-दुख की छाया का,
नृत्य देख पावें जग लोचन॥

सुख की छाया में पुलकित हो,
उल्लास चपल उत्साह प्रबल।
दुख की छाया को सींच-सींच कर,
बहे अश्रु-गंगा अविरल॥

दोनों के छाया-चित्रों से,
अनुभूति हृदय में भर जावे।
मानव-खेकर तरणी उसमें,
सुख-दुख के पार उतर जावे॥

•••

ले चल री कविते उस देश,
जहाँ पथ में पिक बोलते हों।
ले हरियाली निराली खड़े,
द्रुम-कुंज जहाँ मधु बोलते हों॥
सौरभ-कोष लुटा के प्रसून,
जहाँ छवि का पट खोलते हों।
प्रेम से दूब-हरी चरते वन में
मृग शावक डोलते हों॥

• • • •

दृश्य जहाँ के अनोखे मनोरम,
आँखों में आकर झूलते हों।
यादें वियोगी-वियोगी जहाँ,
आते-जाते दुख भूलते हों॥

जहाँ मन मोद में फूलते हों।
आँगन में रवि आ के उषा के,
जहाँ तम का हिय हूलते हों॥

❀ ❀ ❀ ❀

लोनी लता के वितान में जाके,
जहाँ खग प्रेम से कूजते हों।
पी मकरन्द के वृन्द मिलिन्द,
जहाँ अरविन्द पै गूँजते हों॥
भाव तरंग में तैर जहाँ,
कवि-वृन्द मतंग से झूमते हों।
डोलते से, कुछ बोलते से,
तरु-वृन्द जहाँ पथ चूमते हों॥

❀ ❀ ❀ ❀

सागर की लहरों में जहाँ,
निशि में शशि-चाँदनी छा रही हो।
छू के जिसे मलयानिल आती,
जहाँ त्रय-ताप मिटा रही हो॥

रूप अनूप दिखा रही हो।

लाली लिये अधरों में जहाँ,

कवि वाणी सदा मुस्का रही हो॥

•••

रूपसि ! कब से ध्यान तुम्हारा,
करता हूँ मैं जग उपवन में।
सुख-दुख दोनों भूल गये हैं,
एक साधना है जीवन में॥

देवि ! तुम्हारी कला-किरण से
छवि-प्रसून उर-उर में खिलते।
रुचिर-भाव के मधुकर आकुल,
उनका रस पीने को उड़ते॥

वसुधा पर आलोक तुम्हारा,
उज्ज्वल प्रेम-सुधा सा छाया।
चिर प्यासे प्राणों ने जिसमें
मधुर अमरता का रस पाया॥

मंजरित आम्र-द्रुम की डाली
पर सुनती हो पिक का कूजन।
विकसित सरसिज के आसन
पर सुनती हो मधुपों का गुंजन॥

सलिल-वीचियाँ कोमल कर से,
जल मुक्ता पहनाती हैं।
किंजल्कों के प्याले में भर,
तुम्हें मरन्द पिलाती हैं॥

मलयानिल के झोंके से
जब उड़ता देवि तुम्हारा अंचल,
पुष्पों के अन्तर में आकर,
सुख सा बस जाता है परिमल॥

चिर-कोमल-संगीत तुम्हारा
स्वास-स्वास में गुंजित है।
भावुकता के मृदुल-अधर पर,
हास्य तुम्हारा सस्मित है॥

[illegible],
रूप-सिन्धु में तुम उतरी हो।
लोल लहरियों से हिल मिल कर,
पुलक प्रभा सी तुम निखरी हो॥

दिनमणि के कंगन में अपनी
देख रही हो चंचल छाया।
निखिल विश्व के प्राण-मुकुर में,
तव ज्योतित प्रतिबिम्ब समाया॥

शरद-सुन्दरी

•••

कौन तुम मुस्का रही हो !
नील-अम्बर में छिपा-तन,
तारकों की पहिन-माला।
आ गयी हो कौन जग में,
ढालती छबि-सुधा प्याला॥
प्रेम का अभिसार करती,
चातकों में गा रही हो।
कौन तुम मुस्का रही हो !

जन्म दे नभ-नीलिमा ने,
सलिल पर तुमको सुलाया।
लहर के मृदु-पालने में,
अनिल ने तुमको झुलाया॥
पद्म-पत्रों पर सुधा के,
बिन्दु तुम छलका रही हो।
कौन तुम मुस्का रही हो !

है तुम्हारी शुभ्र-छाया।
हो रही निष्प्रभ गगन में,
जलद की जल-हीन काया॥
मालती के पुष्प चुनने,
तुम कहाँ से आ रही हो?
कौन तुम मुस्का रही हो?

खंजनाक्षी इन्दु वदने,
कर वलय कल्हार के कर,
खोजती जिस प्राण धन को,
हृदय में उल्लास भर कर,
वह अनन्त दिगन्त में है,
तुम यहाँ ललचा रही हो।
कौन तुम मुस्का रही हो?

चिर-विरह की वेदना को,
ढालती हो तुहिन-कण में।
आँसुओं की भ्रान्ति होती,
क्षुब्ध-आकुल दुखी मन में॥

मोतियों के लाल-कुंडल
सीप में झलका रही हो।
कौन तुम मुस्का रही हो?

भर गयी मुस्कान छवि तब
कुमुद ने निज अधर खोले।
सुधा-के हिम-बिन्दु पीकर,
मानसर में हंस बोले॥
चाँदनी के प्रणय-पुट में
स्नेह-मधु ढुलका रही हो।
कौन तुम मुस्का रही हो?

वह चला सरस मंथर समीर।
कोमल-किसलय से सजा गात;
द्रुम पुलक उठे तज जीर्ण-पात।
मंजरित-आम्र पर रहे कूक;
पिक जो थे उन्मन और मूक॥
जल-निधि का मृदु-उर डोल उठा,
हो गया तरंगित नील नीर।
वह चला सरस मंथर समीर॥

पाटल के अधरों पर सुहास,
सर में है सरसिज का विकास।
गुंजित मधुपों का मधुर-राग;
चिर-सुप्त चेतना उठी जाग॥
मृदु-लोल-लताओं के पत्रों
में सिहर रहा मर्मर अधीर।
बह रहा सरस मंथर-समीर॥

दुलारित आँखों में अनल-आग;
छूटे भावों के अग्नि-बाण।
धधकी ज्वाला चिर-लाल-लाल,
जलती जीवन की डाल-डाल।
मानव की आशा हुई क्लान्त,
वह गरज उठा केशरी-वीर।
वह चला सरस मंथर समीर॥

मानव-दृढ़-बंधन रहा तोड़,
बढ़ने की आगे लगी होड़।
क्षण भर उसको दुस्सह विराम,
पथ खोज रहा उन्नत ललाम॥
है दूर प्रेम का सर अथाह;
चिर-तृषित हृदय में उठी पीर।
वह चला सरस मंथर-समीर॥

करती भावों का दीप्त-भाल।
रचती मानव का विजय-लोक,
करती है मन का शमन-शोक॥
करुणा के दृग-जल से भीगा,
मानवता का रेशमी-चीर।
बह चला सरस मंथर-समीर॥

कर रहे संसार मेरा

•••

तुम अँधेरी-यामिनी में,
दीप विद्युत का लिये हो।
मैं तिमिर में काँपता तुम—
प्रेम का प्याला पिये हो॥

मैं उपेक्षित ही रहा तुम—
कर रहे हो प्यार मेरा।
कह रहे संसार मेरा॥

मर रहा मैं तनिक ठहरो,
तुम चले आलोक लेकर।
मैं विकल हो सोचता हूँ,
तुम छिपे यह शोक देकर॥

दस मुझ को दूर होते,
क्या यही उपकार मेरा ?
कह रहे संसार मेरा।

पवन से तुम बढ़ रहे हो,
मैं कमठ सा चल रहा हूँ।
हो रही है ज्योति धूमिल,
मैं करों को मल रहा हूँ।

छू न सकते छाहँ मेरी,
क्या यही उद्धार मेरा।
कह रहे संसार मेरा॥

तुम क्षितिज के पार हो मैं—
धरा पर झुँझला रहा हूँ।
तुम अरुण-आलोक में हो,
मैं यहाँ अकुला रहा हूँ॥

पूछना दुःख-दर्द कैसा !
छीनते अधिकार मेरा।
कह रहे संसार मेरा॥

वाला ?

•••

पुष्प-परिमल-स्पर्श करने,
उषा का श्रृंगार आता।
विश्व के हँसते पुलिन पर,
अरुणिमा का ज्वार आता॥

स्वर्ण-घट-जीवन छलकता,
हृदय में मधु-प्यार घोलो।
तुम अमर किस पार बोलो॥

चाँदनी के रजत-सर में,
उर्मियाँ उठ रहीं आकुल।
मेदिनी के हरित-पट पर—
खेलता मद-मंध-परिमल।

यामिनी के मलिन-मुख को,
सुधा में आकर डुबो लो।
तुम अमर किस पार बोलो॥

प्रेम की पीड़ा सँजोए—
चातकी रटती निरन्तर,
करुण-स्वर से गूँज उठते-
विपिन के सुन-सान प्रान्तर।

नयन-नीलम-प्यालियों में,
मदिर-छवि का रस उड़ेलो।
तुम अमर किस पार बोलो

अनिल का अंचल फहरता,
श्रम मिटाने को तुम्हारे,
नीलिमा अभिषेक करती,
प्रेम का नभ के किनारे।

कंपित तरु-पत्र मर्मर—
के स्वरों के साथ डोलो।
तुम अमर किस पार बोलो ?

संध्या प्रतीची के विवर में,
चिर समाधि लगा रही है।
निशा अपने चन्द्र-मुख से,
विरह-गीत सुना रही है।

साधना में लीन हैं कवि,
एक क्षण तो पास हो लो।
तुम अमर किस पार बोलो ?

जीवन-प्रवाह

•••

सरिता के प्रवाह सा जीवन
सतत प्रवाहित रहा धरा पर,
उठतीं लिप्सा लहरें चंचल।
खेल रहा मन-मीन उन्हीं से,
भूल विश्व की बाधा प्रति-पल।

एक पुलिन पर सुख-द्रुम छाया
अपर-कूल में दुख-सैकत-कण।
सरिता के प्रवाह सा जीवन॥

पशुता के प्रस्तर-खंडों पर,
बहता है करता कोलाहल,
मानवता की समतल भू पर,
मंथर-गति से बढ़ता अविरल।

दोनों उपकूलों को छूकर,
झरता रहता है रस-सिंचन।
सरिता के प्रवाह सा जीवन॥

सरल-कुटिल कुछ-कुछ ऋजु-कुंचित,
द्रुत-मंथर है उसकी धारा,
तिमिर - निराशा - घाटी में,
जो भरती आशा का रस प्यारा।

प्रेम-सिन्धु में लय होने को,
रहता वह चिर आतुर-उन्मन।
सरिता के प्रवाह सा जीवन॥

वीचि-विलासों से रस-प्लावित—
है उसकी दुर्गम-पथ-रेखा,
बढ़ता प्राणों के प्रसार में,
कभी न मुड़ कर पीछे देखा।

है प्रवाह का अन्त कहाँ पर,
यह जिज्ञासा रही चिरन्तन।
सरिता के प्रवाह सा जीवन॥

छूटे पद-यावक की लाली,
फैले दिशि-दिशि अरुण-प्रभाली,
रंजित हों फूलों के मृदु-उर
रस-स्नात हों प्रेम-द्रुमाली।

बरसें सुधा-बिन्दु चितवन से,
शीतल हों उर-उर हिम-कण से,
पुलकित हों मानव वसुधा पर,
पाकर मधु-मय रस जीवन से।

संघर्ष

•••

युग-युग से संघर्ष धरा पर मानव का होता आया ॥

एक ओर दुर्बल की आहें,
नभ में गूँज रहीं प्रति क्षण।
और दूसरी ओर सबल की,
तेग-तक्षिणी का नत-फन ॥

कब से स्वार्थ-अंध मानव अपना जीवन खोता आया।
युग-युग से संघर्ष धरा पर मानव का होता आया ॥

करुण-पुकारों की स्वर-लहरी,
अन्तर को है छूती रहती।
पर निर्दय की हुंकारों से
गूँजा करती सारी धरती ॥

हैं कितने इतिहास धरा पर, निर्बल है रोता आया।
युग-युग से संघर्ष धरा पर मानव का होता आया ॥

स्वप्न देखती रहती संतत,
आकांक्षा मानव की उन्नत।
प्रबल पराक्रम करती रहती,
नहीं चाहती होना अवनत॥

अपने वैभव की तंद्रा में मानव है सोता आया।
युग-युग से संघर्ष धरा पर मानव का होता आया॥

जीवन की अभिव्यक्ति नहीं है,
अनय और मनमानी में।
है आनन्द समाया रहता,
साधक - योगी - ज्ञानी में।

पाप-पुण्य के बीज मेदिनी में मानव बोता आया।
युग-युग से संघर्ष धरा पर मानव का होता आया॥

सौंदर्य-बोध

•••

कल्पना-तरणि में मैं बैठा,
वह छवि सागर के पार चली।

इस अगम-अगाध महोदधि में,
लहरें उठतीं घन सी संकुल।
अपने चिर कोमल स्पर्शों से,
रस-सिक्त हृदय करतीं अविरल।

हँस रहा पुलिन पर से कोई,
आलोक अरुण छाया मुख पर,
युग मुकुलित-दृग खुल गये सहज,
मैं हूँ विभोर अपने सुख पर।
अनुरंजित किरण अरुणिमा से
है व्यापक नीली नभस्थली।
कल्पना-तरणि में मै बैठा,
वह छवि सागर के पार चली॥

कहीं न तम का अवगुंठन है,
पुलकित रहती सन्ध्या-ऊषा।
कहीं न दुख की वारिद-छाया,
दृग में चिर सौंदर्य्य-पिपासा।

ज्योति-कणों पर खेल रहे हैं
दिनकर तारक मंजुल हिमकर।
रस नीहारों में प्रतिबिम्बित,
श्रुति-कुंडल के मोती मृदु-तर।
स्वर्णिम-किरीट की आभा से,
खिल रही हृदय की सुप्त-कली।
कल्पना तरणि में मैं बैठा,
वह छवि सागर के पार चली॥

मधु मास आया

•••

कुसुम कलियों के अधर पर रुचिरता का हास आया।
किरण-माली की प्रभा से खेलता मधुमास आया॥

कज में फूटी अरुणिमा,
किंशुकों में प्रेम आया।
लता-वन में कलित-किसलय,
आम्र-वन में हेम छाया।
पुष्प-प्यालों में अनिल मद
मत्त हो मधु-पान करता।
खिले पाटल के सुयश का
मुग्ध मधुकर गान करता॥

कोकिला की काकली में रागिनी का रास छाया।
किरण-माली की प्रभा से खेलता मधुमास आया॥

सुमन-वाणों को सजाकर,
मदन-मन को मोहता है।
प्रकृति को पुलकित हृदय हो,
युग्म-दृग से जोहता है॥

कीर-कोकिल के स्वरों में प्रेम मंगल गा रहा है।
लीन हो स्वर-माधुरी में श्रमित जग सुख पा रहा है॥
निखिल अग-जग के हृदय में उमड़ता उल्लास आया।
किरण-माली की प्रभा से खेलता मधुमास आया॥

द्रुमों के पतझार में जग-
विपिन का औदास्य-खोया।
जग उठा तरु-पात में है,
मृदुल मर्मर आज-सोया॥
हरे - पीले - लाल पत्रों-
से सजा कर गात्र अपना।
हैं वसन्तोत्सव मनाते,
विटप भर उर-पात्र अपना॥

सिन्धु-सरिता के पुलिन पर चाँदनी का हास आया।
किरण-माली की प्रभा से खेलता मधुमास आया॥

छाई पावस की हरियाली

•••

वसुधा के तृण-तृण-रोम-रोम से,
झाँक रहा उल्लास चपल।
नीली उन्नत-गिरि-माला से,
मिली मेघ-माला मंजुल॥
स्नेह-सिक्त सस्मित-लोचन-
से देख रही है मुदित द्रुमाली।
छाई पावस की हरियाली॥

खँडहर बने मुकुल नंदन-वन,
मरु भी रस में स्नात हुए।
झुरमुट-लता नवल यौवन से,
चंचल मसृण-गात हुए॥
उर में पुलक भरे जीवन का,
आई नभ में श्याम घनाली।
छाई पावस की हरियाली॥

सरिताओं में यौवन उमड़ा,
लगी चूमने वे तरु-डाली।
कलित-हरित परिधान सवाँरे,
ढुलकाती वसुधा रस-प्याली॥
घन के उर में जगी वेदना,
फैली विद्युत की उजियाली।
छाई पावस की हरियाली॥

मेघ-मंद्र दिक्-दिक् में भरता,
अपना गर्जन-घोष हृदय का,
चातक के पी कहाँ, करुण-स्वर-
से गूँजा उर सरस निलय का,
अलकों से तम निःसृत करती,
भू पर आई रजनी काली।
छाई पावस की हरियाली॥

कोटि-कोटि प्राणी पावस का,
मंगल-पर्व मनाने आये,
इन्द्र-धनुष की मृदु-तूली से,
घन पर चित्र बनाने आये।
खिली बकुल-बेला कुर्वक औ'
रजनी गंधा की मृदु-डाली।
छाई पावस की हरियाली॥

•••

वह चली अगम जीवन-धारा।
मानव अतृप्ति के मरु-थल में,
वह चली अगम जीवन-धारा।

उसने कण-कण को प्यार किया,
मंथर-गति चल कल-कल बोली।
उसने सींचे जलते उर-थल
वह सुख-दुख के वन में डोली॥
वह बही प्रेम के कूल चूम,
उसका प्रवाह कितना प्यारा।
वह चली अगम जीवन-धारा॥

दृग के निर्झर से चपल झरी,
आँसू के फौव्वारे छूटे,
शीतल समीर बन गई श्वास,
दुर्गम-पथ के प्रस्तर फूटे।

बन गई करुण बन्दी सी वह,
पा गई कामना की कारा।
वह चली अगम जीवन-धारा ॥

रुक सका न वेग वहाँ भी जब,
टूटी कारा की प्राचीरें।
प्रस्तर-प्रस्तर में झलक उठीं,
मृदु-पद-चिह्नों की तस्वीरें ॥
बढ़ती अबाध गति से जाती,
करती प्रशस्त निज पथ सारा।
वह चली अगम जीवन-धारा ॥

शैशव के मृदु-उर से फूटी,
आई यौवन-अमराई में।
प्राणों के पिक की करुण कूक,
भर गई अधर-अरुणाई में ॥
कोमल-काकलि से गूँज उठा,
भावों का मंजुल-तट प्यारा।
वह चली अगम जीवन-धारा ॥

◆◆◆

यों निरुत्साह क्यों निरानंद,
ो गया सरल मानव-जीवन।

पशु-बल की अभिलाषा जागी।
अन्तर में धधक उठी आगी॥
हो रहा भस्म सुख का सम्बल।
है आह-धूम् छाया अविरल॥
चिर-संतापित हो गये प्राण।
झुलसे जाते कोमल-तन-मन।
क्यों निरुत्साह क्यों निरानंद
हो गया सरल मानव-जीवन॥

पाटल से कोमल-हृदय जले।
कितने अध-जले गये कुचले॥
मत्सर की ज्वाला बढ़ी प्रबल।
तन में हैं कोमल-प्राण विकल॥

दग-दग से फूटी कांति-किरण।
क्यों निरुत्साह क्यों निरानंद-
हो गया सरल मानव-जीवन ॥

वह विकृत हुई कोमल-वाणी।
जिससे चेतन मानव-प्राणी ॥
हो गया सुप्त मंजुल गायन।
खो गया प्रेम का अभिनंदन ॥
हिंसा के बम फटते भू-पर,
सागर का होता है मंथन।
क्यों निरुत्साह क्यों निरानंद।
हो गया सरल-मानव-जीवन ॥

तृष्णा उर में घन सी घुमड़ी।
वह महा प्रलय की है उमड़ी ॥
दिशि-दिशि में गर्जन-घोष उठा।
मानव का हृदय मसोस उठा ॥

जो त्याग-तपस्या में रत था,
यह मानव आज बना उन्मन।
क्यों निरुत्साह क्यों निरानंद,
हो गया सरल मानव-जीवन॥

अछूतों की आह

•••

आज पतित है पशु से मानव।

कुछ पशु तो उन्मुक्त विचरते,
वन-वन फिरते जी भर चरते।
कुछ बंधन में रहकर भी, वे,
अपने मन से खेला करते।
पर हम तो गंदी गलियों में,
जीवन का करते कड़ अनुभव।
पशु से आज पतित है मानव॥

पशुओं की सेवा होती है,
उनके लिये भवन बनते हैं।
औषधि भी उनको मिलती है,
हम यों ही घुट-घुट मरते हैं।
रोते और चीखते हैं हम,
नभ से टकराता है मृदु-रव।
पशु से आज पतित है मानव॥

पशु आपस में हिल-मिल जाते,
है अछूत का भेद न उनमें।
श्रम कर असन नित्य वे पाते,
रहता स्थायी खेद न उनमें।
श्वास चपल आती-जाती है,
किन्तु बने हम जीवित ही शव।
आज पतित है पशु से मानव॥

पृथुल-शिखर जो भवन बने हैं,
उनका हम करते नित मार्जन।
पड़े न पग की धूलि कहीं भी,
इस ध्वनि की उनमें है गर्जन॥
कठिन शीत की वर्षा में भी,
छाया पाना हमको विप्लव।
आज पतित है पशु से मानव॥

अनिल पुष्प से सौरभ लेकर,
जग को बाँटा करता प्रति पल।
घने-घरों गंदी गलियों में,
हम न प्राप्त कर सकते परिमल॥

एक उदासी और निराशा लेकर-
आते हैं दिन अभिनव।
आज पतित है पशु से मानव॥

शशि किरणें आती हैं हँसती,
मलिन-घरों में वे दुख पातीं।
पावस की रिमझिम बूँदें भी,
कर्दम में सन कर बह जातीं॥
करता है मधुमास मदिर उर-
की ज्वाला में अपना तांडव।
आज पतित है पशु से मानव॥

पशु आपस में हिल-मिल जाते,
है अछूत का भेद न उनमें।
श्रम कर अशन नित्य वे पाते,
रहता स्थायी खेद न उनमें।
श्वास चपल आती-जाती है,
किन्तु बने हम जीवित ही शव।
आज पतित है पशु से मानव॥

पृथुल-शिखर जो भवन बने हैं,
उनका हम करते नित मार्जन।
पड़े न पग की धूलि कहीं भी,
इस ध्वनि की उनमें है गर्जन॥
कठिन शीत की वर्षा में भी,
छाया पाना हमको विप्लव।
आज पतित है पशु से मानव॥

अनिल पुष्प से सौरभ लेकर,
जग को बाँटा करता प्रति पल।
घने-घरों गंदी गलियों में,
हम न प्राप्त कर सकते परिमल॥

एक उदासी और निराशा लेकर-
आते हैं दिन अभिनव।
आज पतित है पशु से मानव ॥

शशि किरणें आती हैं हँसती,
मलिन-घरों में वे दुख पातीं।
पावस की रिमझिम बूँदें भी,
कर्दम में सन कर बह जातीं ॥
करता है मधुमास मदिर उर-
की ज्वाला में अपना ताडव।
आज पतित है पशु से मानव ॥

परिस्थिति

•••

मैं कहीं न सुख से रह पाया।

जबसे आया फिर रहा विवश,
प्रति-क्षण घेरे रहते दुर्दिन।
जीवन का श्रोत सुखा डाला,
उड़ रहे वासना के रज-कण॥
मैं आकुल हो रस माँग रहा,
आँखों में सघन-तिमिर छाया।
मैं कहीं न सुख से रह पाया॥

है दूर बसा जीवन-संगी,
धूमिल नभ है पथ है पंकिल।
चलते-चलते श्रम से पीड़ित,
हो गया बने लोचन तंद्रिल॥
दुख की शैय्या पर लेट गया,
सपने में मैंने यह गाया।
"मैं कहीं न सुख से रह पाया॥"

है मेघ-रंध्र के पार पहुँच,
दिशि-दिशि में गायन-ध्वनि छाई।
चिर परिवर्तन की लहर उठी,
रस-सिक्त हो गई तरुणाई॥
मैं जाग उठा, सुस्निग्ध नयन,
आँसू का ज्वार उमड़ आया।
मैं कहीं न सुख से रह पाया॥

आँसू के कण बिखरे भू पर,
मंजुल-प्रकाश उर में छाया।
श्रुति रंध्र भरे अन्तर्ध्वनि से,
कोई कहता ठहरो आया॥
उच्छ्वास उठे बंधन छूटे,
खिल उठी कमलिनी सी काया।
मैं कहीं न सुख से रह पाया॥

हे कवे !

•••

कला का चित्रण किया था
हे कवे ! तुमने प्रथम ।
भावना ले भवित की,
मानस रचा तुमने महिम ॥

भारती का जापकर तुम सरस औ' चेतन बने।
प्रेम के उन्माद में तुम सजल-कवि-लोचन बने ॥

विरहिणी की हूक में
तुम कूक कोयल से उठे,
करुण रस बरसा धरा पर
गरज जब घन से उठे।

सुन सके हो पीर उर की चातकों की याचना में।
गा सके हो गान मञ्जुल मातृ-भू-पद-वन्दना में ॥

हृदय-रस निज लेखनी से,
ढाल कर दानी बने,
विश्व को संदेश देकर
तुम कवे ! ज्ञानी बने।

चल रहे हो ध्वान्त-जग में एक नव आलोक लेकर।
सत्य, सुन्दर और शिव के राजते हो ओक बन कर॥

लोक - सेवा - भाव में,
तुम ओज के अवतार हो।
कला की अभिव्यञ्जना में,
कल्पना सुकुमार हो।

रसों की अनुभूति में तुम हुए आत्म विभोर हो।
काव्य की आराधना में, कर रहे तप घोर हो॥
ललित-कविता-लता पर तुम भावना के फूल हो।
प्रेम की मन्दाकिनी के तुम मनोरम कूल हो॥